रामानुजन

अंकों का खेल...

शतरंज का खेल कितना मजेदार होता है ! एक बार दो खिलाड़ी बैठ जायें तो उठने का मन ही नहीं करता। घंटों काले और सफेद खानों के ऊपर राजाओं की लड़ाई चलती रहती है। हाथी, घोड़े, ऊंट, सिपाही—सभी इधर से उधर दौड़ते रहते हैं। खिलाड़ी सबको नचाता रहता है। अन्त में राजा भी चित होता है और सेना भी ढेर हो जाती है।

जानते हो यह खेल किसने निकाला और कहां निकाला ?

आज से लगभग बारह सौ वर्ष पहले सिंध में एक राजा था : श्रीराम। उसके एक मंत्री था; अरब देश का रहने वाला। नाम था : ईसा-बिन-जाहिर। संस्कृत और यूनानी भाषाओं का बहुत बड़ा पंडित। गणित का शास्त्री। राजा को लड़ाई-भिड़ाई का शौक था। घुड़सवारी और शिकार में वह दिन-रात लगा रहता था। राज-पाट का सारा काम मंत्री ही चलाता था।

वरसात के दिनों में जब कभी राजा को महल के अन्दर रहना पड़ता तो उसको बहुत अखरता। उसका मन वहलाने के लिए नाच-गाने और तरह-तरह के मनोरंजनों का प्रवन्ध किया जाता। फिर भी राजा का मन न वहलता। राजमहल के सभी लोग परेशान रहते।

आखिर सोचते-सोचते मंत्री ने एक नई तरकीव निकाली। तरकीव यह कि लड़ाई भी हो जाय, कहीं जाना भी न पड़े, और मनोरंजन भी हो जाय। लड़ाई की लड़ाई और खेल का खेल।

तो एक दिन जव राजा महल में था, ईसा-विन-जाहिर एक चौंसठ खाने वाली विसात और सोलह-सोलह सफेद और काले मोहरे (गोटें) लेकर राजा के सामने आया। कोई मोहरा राजा, कोई मंत्री, कोई हाथी, कोई घोड़ा, कोई पैदल। मंत्री ने राजा को यह खेल वाली लड़ाई वतानी शुरू की। राजा खुले मैदान की लड़ाई का आदी था। पहले तो यह खेल उसकी समझ ही में न आया। थोड़ी देर वाद जव इस खेल को वह समझा, तो उछल पड़ा। और अव जो वह मंत्री के साथ खेलने वैठा तो घंटों खेलता ही रह गया। राजा को वाहर जाने की जरूरत ही न

रह गयी। वह राजमहल में रहकर राजकाज पर भी ध्यान देने लगा। सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। दरबार में खुशियां मनायी जाने लगीं। राजा ने खुश होकर अपने मंत्री को इनाम देना चाहा और कहा : "मंत्री, मांगो क्या मांगना चाहते हो ? हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं।"

ईसा-बिन-जाहिर टालमटोल करता रहा। "महा-राजाधिराज ! आप की कृपा से दास को किसी चीज की जरूरत नहीं। आपकी दया ही मेरे लिए सबसे बड़ा इनाम है।"

राजा नहीं माना। उसने कहा, "इनाम तो तुम्हें मांगना ही पड़ेगा।"

मंत्री ने कहा—"अच्छा महाराज, इसी शतरंज की बिसात को भरवा दीजिए। पहले खाने पर गेहूं का एक दाना, दूसरे पर दो, तीसरे पर चार, चौथे पर आठ, हर खाने पर पिछले खाने के दुगने।"

राजा मुस्कराता हुआ बोला : "बस इतना ही ? और कुछ मांगो। हीरे, मोती, सोना, चांदी। जो मांगोगे वही मिलेगा।"

"नहीं अन्नदाता !" मंत्री ने कहा। "दास के लिए इतना ही बहुत है।"

तो अब बिसात पर दाने रखे जाने लगे। चार-छः

खानों तक तो ऐसे ही रूमाल से निकाल कर गेहूं रख दिये गये और फिर धीरे-धीरे थैले की जरूरत पड़ने लगी। बारहवें-चौदहवें खाने से बोरे पर बोरे आने लगे। और बाइसवें-तेइसवें खाने तक आते-आते गाड़ी और छकड़े पर गेहूं के बोरे लाद-लादकर लाये जाने लगे।

अब राजा साहब घबराये। वह तो समझते थे कि सेर डेढ़ सेर गेहूं में छुटकारा मिल जायेगा। यहां पता चला कि राजा का पूरा खजाना खाली हो गया और अभी तीस खाने भी नहीं भरे। उन्हें क्या मालूम था कि गणित में क्या चमत्कार है।

हिसाब लगाने पर पता चला कि सारे खाने भरने की कोशिश की जाती तो सारी दुनिया के भीतर जितना गेहूं पैदा होता था, वह पूरे तीन हजार बरस तक लगातार ईसा-बिन-जाहिर को दिया जाता तो भी उसका इनाम पूरा नहीं हो सकता था।

यह है शतरंज की कहानी और गणित के चमत्कार का एक नमूना।

एक और ईसा-बिन-जाहिर हमारे देश में पैदा हुआ। राजा श्रीराम के राज में नहीं बल्कि अंग्रेजों के राज में। वह राजा का मंत्री नहीं था। जिन्दगी भर गरीबी और बेरोजगारी में दिन बिताता रहा। उसने

शतरंज का खेल नहीं निकाला, बल्कि गणित के आश्चर्य-जनक सिद्धान्त निकाले। हां उसका भी खेल वही था—अंकों का खेल।

उसका नाम था: श्रीनिवास रामानुजन।

लो, अब उसकी पूरी कहानी सुनो।

मुनीम-पंडित

दूर दक्षिण में बंगाल की खाड़ी और पूर्वी घाट की पहाड़ियों के बीच एक सुन्दर प्रदेश है : तमिलनाड या तमिल प्रदेश ।

इस प्रदेश का मुख्य नगर है — मद्रास ।

इसी प्रदेश में कावेरी नदी के किनारे एक नगर है तंजावूर या तंजोर । यह एक बहुत बड़ा नगर था । बड़े-बड़े भवन, विशाल मन्दिर, लम्बे-चौड़े बाजार इस नगर की शोभा बढ़ाते थे । इस नगर में धन-दौलत की कमी नहीं थी । आज से लगभग तीन सौ वर्ष पहले अंग्रेज हमारे देश में आये । अभी उनके पांव नहीं जम पाये थे । उन्हें रुपयों की जरूरत पड़ी । उन्होंने इस नगर को बुरी तरह लूटा और राजा से चालीस लाख रुपया छीन लिया । वहां के मकानों, भवनों और बाजारों को उन्होंने नष्ट कर दिया ।

इसी ऐतिहासिक नगर तंजोर के निकट एक स्थान है ईरोड । नारियल के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के बीच बसा हुआ

छोटा सा कस्बा। धान के हरे-भरे खेत। चारों ओर हरियाली और शान्ति का राज्य।

ईरोड गांव में पक्के घर बहुत कम थे; इन घरों में कस्बे के धनी लोग रहा करते थे। धान के लगभग सभी खेतों, नारियल के करीब-करीब सभी बागों और मकानों के मालिक ये ही लोग थे। कस्बे के और सब लोग रहते थे टूटे-फूटे कच्चे मकानों और झोपड़ियों में। मिट्टी या बांस की दीवारें। ताड़ और नारियल के पत्तों की छतें। सभी लोग—मर्द, औरतें और बच्चे—मुंह-अंधेरे से रात गये देर तक काम में जुटे रहते। कड़ी धूप में खेतों में काम करते। बढ़ई-लोहार कभी हल बनाते, कभी चारा काटने के लिए गंड़ासा तेज करते। गड़रिये और चरवाहे भेड़ों को चराने के लिए दूर-दूर निकल जाते। छोटे-छोटे दूकानदार नमक-मसाला बेचते रहते।

फिर भी, कस्बे के लोग कड़ी मेहनत करते-करते मर जाते, लेकिन पेट भर खाना बहुत कम लोगों को नसीब होता। सभी के ऊपर महाजनों का उधार चढ़ता जाता और आये दिन लोगों का छप्पर-झिलंगा, लोटा-थाली, नीलाम होता रहता। बहुत से लोग रोटी-रोजी की तलाश में कस्बा छोड़कर दूर भाग जाते।

इसी कस्बे में एक गरीब ब्राह्मण रहता था : श्रीनिवास आयंगर। बेचारे के पास न खेत थे, न नारियल के बाग। कोई काम-धंधा नहीं। ब्राह्मण होने से खेतों में मजदूरी का काम भी नहीं मिल पाता था। कोई पाठशाला भी ऐसी नहीं थी जहां बच्चों को पढ़ाकर अपना पेट पालता। पुरोहिती करना और धर्म के नाम पर गरीबों की गाढ़ी कमाई अपने पेट में भर लेना इस ब्राह्मण को अच्छा नहीं लगता था।

तो हुआ यह कि एक दिन वह गांव से चला गया और नौकरी की खोज में इधर से उधर भटकने लगा। भटकते-भटकते उसको एक नौकरी मिल गयी। ईरोड से कुछ दूर पर एक छोटा सा नगर है : कुंभकोणम। यहीं एक कपड़े की दूकान थी। दूकान के मालिक ने ब्राह्मण को मुनीमी के काम पर रख लिया।

तनखाह कितनी ?

महीने में तीस रुपये।

अब पण्डित जी मुनीम जी बन गये। बहुत सबेरे घर से आना। दिन भर मोटे-मोटे बही-खाते उलटना, हिसाब-किताब लिखना, और रात को तेल के दिये की लौ के सामने बैठकर घण्टों रोकड़ मिलाना !

फिर भी, मुनीम जी अपने नियम के बड़े पक्के थे।

बनिये के यहां वह नौकर जरूर थे, लेकिन बनियागिरी से उन्हें कोई मतलब नहीं था। रोज देखते थे कि मुनाफा कैसी-कैसी तरकीबों से कमाया जाता है। परन्तु उनके मन में कभी यह बात नहीं आयी कि खुद अपने लिए मुनाफा कमायें। उन्हें तो एक धुन रहती : उनका हिसाब सही रहे और रोकड़ ठीक बैठे। जब तक काम पूरा न हो जाता, वह उसी में जुटे रहते। और जैसे ही उनका हिसाब मिल जाता, वह इतने प्रसन्न होते मानो उन्हें वह निधि मिल गयी हो जिसकी खोज में वह जुटे थे।

ऐसा था मुनीम पंडित का जीवन।

दिन बीतते गये।

१८८७ का साल आ गया। देश में बड़ी-बड़ी घटनाएं घटीं।

इसी साल भारत के पांचवें विश्वविद्यालय (इलाहाबाद यूनिवर्सिटी) की स्थापना हुई। बंगाल में किसानों की बेदखली रोकने के लिए "लगान कानून" पास हुआ। मद्रास में "इंडियन नेशनल कांग्रेस" का तीसरा अधिवेशन हुआ और इस साल के बाद से बड़े अंग्रेज लाट ने कांग्रेस में भाग लेने वालों को दावत

देना वन्द कर दिया और सरकारी नौकरों के लिए कांग्रेस में जाने की पूरी मनाही कर दी।

और इसी साल २२ दिसम्वर को मुनीम पंडित के घर एक शिशु ने जन्म लिया।

नाम रखा गया : रामानुजन।

यही शिशु—श्रीनिवास आयंगर रामानुजन आयंगर—आगे चलकर महान गणितज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

बालक रामानुजन

रामानुजन धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। कस्बे की दुनिया को वह आंखें फाड़-फाड़कर देखता। उसे चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पेड़ दिखायी देते। लोग उन पेड़ों पर चढ़ते और उतरते। बालक रामानुजन खड़ा देखता रहता।

अब आधी दूरी तय हो गयी !...
अब चौथाई दूरी बाकी है !...
लो अब चोटी पर पहुंच गये।

धीरे-धीरे वह अंदाज लगाने लगा कि यह पेड़ अगर कुछ बड़ा हो जाय और दूसरा कुछ छोटा हो जाय, तो दोनों बराबर हो जायें ! और उसे बिना पटरी-फीते के. आंखों से, पेड़ों की ऊंचाई नापने में आनन्द आने लगा।

वह भेड़ों के झुंड के झुंड चरते देखता और उनको गिनने लगता। कुछ भेड़ें भागतीं। चरवाहे दौड़ते-दौड़ते परेशान हो जाते। बालक रामानुजन अपनी तेज आंखों

से उनका पीछा करता और दम की दम में भेड़ों को ठीक-ठीक गिन लेता। उसकी गिनती सदा ठीक ही निकलती।

यही उसका खेल था और यही उसकी शिक्षा थी। पढ़ने का कोई प्रवन्ध नहीं था। थोड़े से धनी लड़के उस जमाने में पढ़-लिख पाते थे। दूसरे सब बच्चे या तो काम-धंधे में लगे रहते या इधर-उधर घूमते रहते। ब्राह्मणों के घरों में थोड़ी-बहुत संस्कृत पढ़ाई जाती थी और बच्चों को धर्म की शिक्षा दी जाती थी। आगे चलकर ये बालक पण्डित बन जाते और आचार्य या शास्त्री कहे जाते। दूसरे बालक अपढ़ रह जाते और वही हल की मूठ और कुदाल जीवन भर के लिए उनके हाथ आ जाती।

बालक रामानुजन को कौन पढ़ाता? पिता मुनीम थे। बहुत सबेरे से लेकर रात अंधेरे तक दूकान पर जुटे रहते और रात को घर आते। थके-हारे कुछ खा-पीकर सो जाते। बातें भी करते तो हिसाब-किताब की। बस वही रोकड़ और बही-खाते की चर्चा। बालक रामानुजन अपने पिता जी के आने तक जागता रहता। वह उनकी बातें बड़े ध्यान से सुनता। धीरे-धीरे उसे भी हिसाब-किताब की बातों में आनन्द आने लगा।

मुनीम जी अपने बालक को पुरोहित नहीं बनाना चाहते थे। बेचारे रामानुजन को संस्कृत पढ़ायी ही नहीं गयी। घर में चार अक्षर तमिल और पहाड़ा, जोड़, बाकी, गुणा, भाग—यही उसकी शिक्षा थी।

जब वह पांच-छः वर्ष का था, तभी लम्बे-लम्बे जोड़-बाकी के सवाल करने लगा। वह बैठा-बैठा अपने-आप संख्याएं लिखता, फिर कभी उनको जोड़ता, कभी घटाता, कभी गुणा करता और कभी भाग देता। यही उसकी पढ़ाई थी और यही उसका खेल था। दूसरे बच्चे खिलौनों और गुड़ियों से खेलते और वह अपनी संख्याओं से खेलता रहता। दूसरे बच्चे जिस प्रकार अपने खिलौनों और गुड्डे-गुड़ियों से प्रेम करते हैं, उसी प्रकार, बल्कि उससे भी ज्यादा, वह अपनी बनायी हुई संख्याओं से प्रेम करने लगा।

संख्याओं का यह अद्भुत प्रेम जीवन भर उसके साथ रहा। आगे चलकर जब जमाने का दुख-दर्द उसको भोगना पड़ा, तो यह प्रेम ही उसको साहस देता रहा।

स्कूल में

१८९४ का साल शुरू हुआ। स्कूल खुले। सड़कों पर चहल-पहल। छोटे-छोटे वच्चे और वड़े-वड़े वालक छुट्टियां विताकर फिर स्कूल की ओर जाने लगे। पुराने दोस्तों-मित्रों से फिर मिलना! हा-हा-ही-ही! नये-नये वच्चे जो पहली वार स्कूल में आये थे हर चीज को आंखें फाड़-फाड़कर देखते। ऐसा लगता था, जैसे किसी चिड़िया-घर को देखने आये हों।

सात वर्ष का वालक श्रीनिवास रामानुजन भी इन्हीं नये वच्चों के वीच स्कूल में दिखाई पड़ रहा है। आज उसके कपड़े खास तौर से धोये गये थे। पैरों में चप्पलें नहीं। कई मील घर से पैदल चलकर आने से वह कुछ थका-थका दिखाई पड़ता है। फिर भी वह वहुत प्रसन्न है। आज से वह कुंभकोणम हाई स्कूल का विद्यार्थी हो गया है और उसे पढ़ने को मिलेगा।

स्कूल में पढ़ाई शुरू हो गयी। रामानुजन को पढ़ने में आनन्द आने लगा। गणित का घन्टा उसको सवसे

अच्छा लगता। यहां उसे सवाल भी निकालनेप
और मास्टर साहब से गुर भी मालूम होते थे। एक गुर कक्षा में पढ़ाया जाता और रामानुजन कापी पेन्सिल लेकर बैठ जाता, कक्षा में बताये गये गुर की सहायता से दूसरे गुर वह स्वयं निकालने में जुट जाता।

घन्टा किसी चीज का हो, श्रीनिवास रामानुजन अपनी सीट पर बैठा सवाल ही निकालता रहता। इतिहास के घन्टे में मास्टर साहब ने कोई बात पूछी, लड़के जवाब दे रहे हैं—रामानुजन गोल ! उसका दिमाग तो गणित की कोई जटिल समस्या सुलझाने में लगा है।

गणित के घन्टे में ऐसा मालूम होता, जैसे किसी मछली को बहुत बड़े सागर में डाल दिया जाय। उसे ऐसी-ऐसी बातें सूझतीं, जिन्हें तेज से तेज लड़के नहीं समझ पाते थे। कभी-कभी तो मास्टर साहब भी चक्कर में पड़ जाते।

वह पांचवें दर्जे में था।

एक दिन की बात है कि मास्टर साहब ने कहा : "किसी संख्या को उसी संख्या से भाग दें तो भाग-फल १ होता है।"

कई लड़के इस बात को समझ नहीं पाये। मास्टर साहब समझाने लगे—

"देखो, अगर आठ को आठ से भाग दिया जाय तो भाग-फल रहा : एक। सौ को सौ से भाग दो, भाग-फल—एक।"

सब लड़के सन्तुष्ट हो गये। यह गुर उनकी समझ में आ गया। परन्तु पीछे कोने में बैठा एक बालक उठ खड़ा हुआ—

"जी, ऐसी बात हमेशा तो नहीं होती। शून्य को शून्य से भाग दें तो भाग-फल कुछ नहीं होगा।"

"होगा क्यों नहीं ?" मास्टर साहब बोल पड़े, "जीरो बटे जीरो—बराबर एक।"

पिछली सीट वाला बालक अपनी बात पर अड़ा रहा।

"जी नहीं। जीरो बटे जीरो का कोई अर्थ ही नहीं होता। इसलिए जीरो को जीरो से भाग दे ही नहीं सकते।"

बात तो मास्टर साहब के लिए भी नयी थी। बेचारे को पता नहीं था कि यह बात, जो दस-वर्षीय बालक श्रीनिवास रामानुजन इतने धड़ल्ले से कह रहा था, उसे गणित के बड़े-बड़े पण्डित ही समझ और समझा सकते थे। उन्होंने डाटकर बालक रामानुजन से कहा :

"फिजूल बातें मत करो ! मैं जो कहता हूँ वही ठीक है !"

रामानुजन अपनी सीट पर चुपचाप बैठ गया। परन्तु उसे पूरा विश्वास था कि उसकी बात ठीक है। उस दिन से मास्टर साहब कक्षा में जो बात कहते, बहुत सोच-समझकर कहते। उन्हें डर लगा रहता कि कहीं कोई ऐसी बात मुंह से न निकल जाय, जिस पर बालक रामानुजन टोक दे और वह उस बात को समझा न सकें।

जानते हो श्रीनिवास रामानुजन की बात कैसे ठीक थी ? लो, हम तुम्हें समझाये देते हैं।

देखो, बारह को छः से भाग दो। भाग फल रहा कितना ?

दो !

इसे हम ऐसे भी लिख सकते हैं : $\frac{१२}{६} = २$!

अब बारह को तीन से गुणा किया और छः को भी तो मिला $\frac{३६}{१८} = २$!

मतलब यह कि किसी भिन्न के दोनों अंशों को एक ही संख्या से गुणा करो तो मूल्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

अच्छा तो एक संख्या लो $\frac{१२}{६}$ । इसका मूल्य हुआ २ । अब हर अंश को शून्य से गुणा किया तो...

$$\frac{१२}{६} \times \frac{०}{०} = \frac{०}{०}$$

स्पष्ट है कि इसका मूल्य २ होना चाहिए, क्योंकि $\frac{१२}{६}$=२ ! और मास्टर साहब की बात ठीक होती तो इसका मूल्य होता १ ।

यह तो बड़े मजे की बात हुई कि १=२ तो २=३ तो १=३ ? ऐसा हो ही नहीं सकता ।

इसलिए यह बात कहना गलत है कि $\frac{०}{०}$ = १ ।

समय बीतता गया । बालक रामानुजन पढ़ने में लगा रहा । दूसरे विषयों के अध्यापक उसे लद्दधड़ विद्यार्थी समझते रहे । रोज वह घर से कई मील पैदल चलकर आता । गरमी, जाड़ा, बरसात—नंगे पांव । घर में खाने को बहुत कम मिलता था । जो कुछ मिला, खा लिया । उसके पड़ोस में एक बीज की पैदावार बहुत होती थी जिसको भून और पीसकर डब्बों में भर-भरकर शहर के बड़े-बड़े सेठ विदेशों को भेजा करते थे । वह बीज "कॉफी" का बीज कहलाता था । तुमने भी कॉफी पी होगी । उसका स्वाद चाय से जरा कड़ुवा होता है और उसमें अधिक चीनी और दूध मिलाना पड़ता है । यह बीज पानी में उबालकर, थोड़ा-सा नमक

डालकर, बिना दूध के दो बड़े-बड़े प्याले पीकर, रामानुजन स्कूल जाता और दिन-भर बिना कुछ खाये-पिये स्कूल में पढ़ा करता। दूसरे सब बच्चे मिठाई और चाट उड़ाते और वह खाली घन्टों में अलग-थलग बैठा गणित के सवाल लगाया करता।

कुछ ही दिनों में उसे ऐसा लगने लगा कि गणित की जो किताबें स्कूल में पढ़ाई जाती हैं, उनमें लिखी सारी बातें उसको पहले से ही मालूम हैं। अब वह स्वयं नयी-नयी बातों की खोज करने लगा। गणित की एक शाखा है : त्रिकोणमिति। यह आठवें दर्जे के लड़कों को नहीं पढ़ाई जाती। त्रिकोणमिति में त्रिभुज के कोणों की सहायता से भुजाओं का हिसाब लगा लिया जाता है। यह बड़े काम का विज्ञान है। तुम्हें किसी ऊंचे पेड़ की ऊंचाई नापनी हो, या बड़ी नदी की चौड़ाई नापनी हो, तो कहीं से दो कोण नाप लो और त्रिकोणमिति की सहायता से बिना पेड़ पर चढ़े या बिना नदी पार किये, सब कुछ ज्ञात हो जायेगा।

रामानुजन ने अपने-आप त्रिकोणमिति पढ़नी शुरू कर दी। उसके पास कोई पुस्तक भी नहीं थी। परन्तु वह "खोज" के लिए निकल पड़ा और तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था तक उसने त्रिकोणमिति के कई सौ नियम

और गुर खोज निकाले। आगे चलकर जब उसने त्रिकोणमिति की किताबें कालेज में पढ़नी शुरू कीं, तो पता चला कि जिन बातों को वह अपनी "खोज" समझता था, वे गणित के पण्डितों को पहले से ही ज्ञात थीं।

उसकी "खोज" चाहे बड़ी रही हो, या छोटी, चाहे पहले से लोगों को ज्ञात रही हो, या बिलकुल नयी हो — वह थी बहुत महत्वपूर्ण। बहुत सी बातें, जिन्हें दिग्गज विद्वानों और बड़े-बड़े पण्डितों ने वर्षों के कड़े परिश्रम और बड़े-बड़े पोथन्ने चाटने के बाद ज्ञात किया था, उन्हें एक गरीब तेरह-वर्षीय बालक ने बैठे-बैठे अपने-आप निकालकर फेंक दिया था। यह था उसकी "खोज" का महत्व।

सोलह वर्ष की अवस्था तक वह कुंभकोणम हाई स्कूल में पढ़ता रहा। परन्तु उसे गणित की कोई बड़ी किताब देखने को नहीं मिली। फिर भी, उसने अपना रास्ता बना लिया था। बीज-गणित और अंक-गणित में उसकी खोज चलती रही।

आखिर १९०३ का दिसम्बर महीना आया और रामानुजन ने मद्रास यूनिवर्सिटी की मैट्रिकुलेशन (हाई स्कूल) परीक्षा पास कर ली। उसको नम्बर अच्छे

मिले; बहुत अच्छे नहीं। गणित में बहुत ज्यादा, अंग्रेजी में उससे कम, दूसरे विषयों में बस पास होने लायक। उसके पास होने की न किसी को खुशी हुई, न किसी को दुःख। न कोई उसे तेज विद्यार्थी समझता था, न किसी को उससे कोई आशा थी।

हां, घर वाले जरूर खुश थे कि अब श्रीनिवास किसी दफ्तर में बाबू की नौकरी पा जायेगा क्योंकि यही उसके पिता उसको बनाना चाहते थे।

एफ. ए.—प्रथम वर्ष

सन् १९०४ का साल शुरू हुआ। रामानुजन कुंभकोणम गवर्नमेन्ट कालेज का विद्यार्थी हो गया। स्कूल जाने का उसका जो ढंग पहले था, वही कालेज में भी रहा। पहले की ही तरह वह कॉफी पीकर नंगे पांव कालेज जाता। कुछ खाये-पिये विना दिन भर पढ़ाई में लगा रहता। पैदल ही वह घर लौटता।

मैट्रिक परीक्षा में गणित में वहुत अच्छे, और अंग्रेजी में अच्छे, नम्वर आये थे। सो, श्रीनिवास रामानुजन को सुब्रमण्यम्-वजीफा भी मिल गया। पैसे की चिन्ता कुछ कम हुई; कुछ कितावों का प्रवन्ध हुआ; कुछ कपड़े-लत्ते भी वन सकते थे और दो-एक रुपये घर भी दिये जा सकते थे। अव वह निर्द्वन्द होकर पढ़ने लगा। पढ़ने के अलावा कोई दूसरा काम उसे नहीं था।

परन्तु वह पढ़ता क्या था? वह पढ़ता था केवल गणित। गणित की जो भी किताव उसको कालेज पुस्तकालय में मिल जाती, उसे लेकर एक-दो दिन में

पूरी तरह चाट जाता। उसका एक-एक प्रश्न जब तक वह स्वयं हल न कर लेता, उसे चैन न मिलता। इसी पढ़ने में वह नये-नये सूत्र या नये गुर (फार्मूले) स्वयं निकाल लेता, जो उसकी पढ़ी हुई किताबों में कहीं नहीं मिलते थे।

उसकी कक्षा में गणित के अतिरिक्त तीन विषय और पढ़ाये जाते थे : अंग्रेजी, इतिहास और शरीर-विज्ञान।

अंग्रेजी तो मैट्रिक में कुछ अच्छी थी; इसलिए वह टेढ़े-सीधे चलती रही। परन्तु इतिहास और शरीर-विज्ञान रामानुजन की समझ में नहीं आते थे। इन घन्टों में उसका मन बिलकुल नहीं लगता था। फिर, ये सब विषय अंग्रेजी में पढ़ाये जाते थे। कक्षा में तमिल कोई बोल नहीं सकता था। बहुत से लड़के मुंह फैलाये ताका करते, या इधर-उधर की बातें सोचा करते।

श्रीनिवास रामानुजन इन घन्टों में कक्षा में बैठता अवश्य था, लेकिन बैठता था पिछली सीट पर। आम तौर से अध्यापक उससे प्रश्न नहीं पूछते थे। पीछे बैठा, कापी-पेन्सिल लिये, वह कोई न कोई सवाल हल करता रहता था। कभी-कभी उससे कोई बात पूछी जाती तो उसे पता भी न चलता। अध्यापक बिगड़कर कहते :

"रामानुजन ! क्या कर रहे हो ?"

पर श्रीनिवास रामानुजन तो अपने सवाल में डूबा होता ! उसे क्या मालूम कि अध्यापक ने क्या पूछा है। घन्टा वज जाता और सव लड़के उठकर दूसरी कक्षा में चले जाते। और रामानुजन ? वह वहां ही वैठा रहता। पिछली सीट पर वैठे लड़के उसको धक्का देते :

"चलिए महाशय जी ! घन्टा वज गया है।"

तव कहीं वह चौंकता।

इस तरह की पढ़ाई का फल यह हुआ कि गणित को छोड़ रामानुजन अन्य सभी विषयों में गोल हो गया।

साल अन्त के करीव आया। परीक्षा के दिन आये। सभी लड़के इम्तहान की तैयारी में जुट गये। रामानुजन भी तैयारी में लगा—परन्तु केवल गणित की तैयारी में !

अन्त में परिणाम वही हुआ जो होना था।

इतनी अधिक गणित जान लेने के वाद भी वह और किसी विषय के पर्चे में कुछ न कर सका। रामानुजन फेल हो गया। उसका वजीफा वन्द कर दिया गया।

गणित के अथाह सागर में डुवकी लगाने वाले श्रीनिवास रामानुजन की पीठ पर "अयोग्य विद्यार्थी" का ठप्पा लग गया।

असफलता-निराशा-असफलता

फेल होने पर सभी का दिल टूट जाता है। विद्यार्थी यदि गरीब हो तो उसे चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा दिखायी देता है।

रामानुजन एफ. ए. के पहले वर्ष में ही फेल हो गया। कालेज में उसे 'अयोग्य विद्यार्थी' समझा जाने लगा। घर में माता-पिता को आशा थी कि पढ़-लिख-कर निकलेगा; कहीं बाबूगिरी मिल जायेगी। चार पैसे घर में आयेंगे। हालत कुछ सुधरेगी।

ये सब आशाएं धूल में मिल गयीं।

फिर कालेज में जाकर पढ़ना? इतिहास, शरीर-विज्ञान के सूखे लेक्चरों का खयाल आते ही शरीर में कंपकंपी-सी उठ आती थी। उसकी समझ में नहीं आता था कि क्या करे। हर घड़ी मन के ऊपर एक बोझ सा लदा रहता। गणित के सवाल लेकर बैठ जाता। जब तक सवाल लगाता रहता, तब तक उसका मन भी बहला रहता! फेल होना और अपनी निराशाओं को भूल जाता!

घर वाले देखते तो उनको बड़ा गुस्सा आता :

"न कोई काम न धाम ! न घर की चिन्ता, न पैसा कमाने की फ़िक्र ! हर घड़ी गणित ! क्या रखा है इसमें ?"

रामानुजन अब गणित के प्रश्न भी चोरी-छिपे करने लगा।

यह बोझ उसके लिए असह्य था। वह सोचने लगा—कहीं दूर भाग जाऊं जहां मुझे कोई जाननेवाला न हो।

रामानुजन का एक मित्र था। उससे कभी-कभी खुलकर बातें होती थीं। रामानुजन ने अपना दुख उसे बताया। मित्र ने कहा :

"हां, हां। जरूर भाग जाओ। उत्तर की ओर भागोगे, तो घर वालों को भी पता नहीं चलेगा और कोई जान भी न सकेगा कि तुम कौन हो। वहां शायद तुम्हारे पढ़ने का भी प्रबन्ध हो जाय। तुम बच्चों को गणित और तमिल पढ़ाओगे तो ट्यूशन से तुम्हारा खर्च पूरा हो जायेगा।"

और एक दिन मुनीम-पंडित का पुत्र, एफ. ए. (प्रथम वर्ष) का फेल विद्यार्थी, अठारह-वर्षीय युवक श्रीनिवास रामानुजन घर से भाग निकला। भागकर

पहुंचा तैलंगाना प्रदेश में। पराया स्थान, कोई अपना सगा-सम्बन्धी नहीं। बोली-भाषा परायी। न कोई उसकी बोली समझता, न वह किसी की भाषा समझ पाता। उसकी भाषा थी तमिल और यहां की भाषा थी तेलगू। टूटी-फूटी अंग्रेजी की मदद से वह पढ़े-लिखे लोगों से थोड़ी-बहुत बात कर लेता था।

गरीब का पुत्र! घर से भागा हुआ! ऐसे को कौन सहारा देता?

वह भागा था घर के अपमान और सगे-सम्बन्धियों के तानों से बचने के लिए। यहां उससे भी अधिक अपमान हो रहा था। पग-पग पर झिड़की और घुड़की। कोई उसको आवारा समझता, कोई भिखारी। किसी ने उसकी पीठ पर हाथ नहीं रखा। किसी ने उसे सहारा नहीं दिया।

लम्बे समय तक रामानुजन मारा-मारा फिरता रहा। फिर एकदम उसको घर की याद ने सताया। उसे अपने माता-पिता का प्रेम याद आया। ईरोड के मैदान, नारियल के प्यारे पेड़ याद आये। उसका दिल भर आया।...और वह फिर घर की ओर लौट पड़ा।

और फिर कुंभकोणम कालेज के वे ही लेक्चर और वही कार्यक्रम। श्रीनिवास रामानुजन ने फिर

पढ़ना शुरू कर दिया। और अब की बार इतिहास, शरीर-विज्ञान और अंग्रेजी भी। उसके सभी अध्यापक उससे खुश रहने लगे। सभी समझते थे कि इस बार रामानुजन अवश्य पास हो जायेगा।

मद्रास विश्वविद्यालय का एक नियम था कि कालेज में हर विषय के जितने भी लेक्चर हों, विद्यार्थियों को उनमें से कम से कम तीन-चौथाई में जरूर उपस्थित रहना चाहिए। जो विद्यार्थी इससे कम उपस्थित रहता, उसे परीक्षा में बैठने से रोक दिया जाता। रामानुजन इतने दिन तक गायब रहने के बाद फिर से कालेज में आया था। उसकी हाजिरी पूरी नहीं हो सकी। वह भी इस नियम की लपेट में आ गया। सब लड़के परीक्षा में बैठे, बेचारा रामानुजन रोक लिया गया।

यह साल इस उलट-फेर में बीता।

घर वालों ने सोचा—एक और कोशिश की जाय। आंखों के सामने रहेगा तो सभी को उसके निकम्मेपन पर गुस्सा आयेगा; खुद भी पढ़-लिख नहीं सकेगा। इसको घर से दूर भेज दिया जाय तो शायद पढ़ ले।

और १९०६ में उसे ईरोड और कुंभकोणम से दूर, मद्रास के एक कालेज में, भरती करवा दिया गया।

कालेज छोटा सा था। पढ़ाई-लिखाई का भी बहुत अच्छा प्रबन्ध नहीं था।

कालेज का नाम था : पिचाईअप्पा कालेज।

कड़ी मेहनत, खाने-पीने के कष्ट, पैसे की तंगी! कुछ ही दिनों में रामानुजन का स्वास्थ्य खराब होने लगा। इसी खराब हालत में वह कालेज जाता रहा और जी-जान से अपनी पढ़ाई में लगा रहा।

तो क्या हुआ?

हुआ यही कि एक दिन वह बहुत बीमार पड़ गया। उसका उठना-बैठना दूभर हो गया। कुछ दिन दवा-दारू की। तबियत ठीक नहीं हुई। फिर घर की याद आयी और रामानुजन घर लौट आया।

घर आते ही कुछ दिनों में उसका स्वास्थ्य ठीक हो गया। और फिर उसने पढ़ना आरम्भ कर दिया। लेकिन अब की बार कालेज में नहीं। घर पर ही दिन-रात वह पढ़ाई में लगा रहता। उसने प्राईवेट परीक्षा में बैठने के लिए फार्म भरा।

परीक्षा शुरू हुई, खतम हुई और नतीजा निकला। परिणाम वही। गणित में रामानुजन के बहुत अच्छे नम्बर आये; अंग्रेजी में पास और दूसरे विषयों में फेल।

रामानुजन फिर फेल हो गया!

सूत्र संग्रह

अब रामानुजन के पास कोई काम नहीं था। पढ़ाई-लिखाई बन्द। न कहीं आना, न जाना। कोई सीधे मुंह उससे बात भी न करता। हर घड़ी वह चिन्ता में डूबा रहता।

एक दिन एक ऐसी बात हुई जिससे उसका जीवन ही बदल गया।

उसका एक मित्र था, जो कुंभकोणम कालेज में पढ़ता था। उसे भी गणित से रुचि थी और वह भी गणित की किताबें पढ़ा करता था। एक दिन उसने रामानुजन को एक उपहार लाकर दिया। तुम भी कहोगे कैसा था यह विचित्र उपहार। उपहार में दी उसने एक गणित की पुस्तक, जिसे वह अपने कालेज की लाइब्रेरी से उधार लाया था!

पुस्तक का नाम था "शास्त्रीय एवं प्रायोगिक गणित सूत्र संग्रह" (सिनॉप्सिस आफ् एलीमेन्ट्री रिजल्ट्स इन प्योर एण्ड एप्लाइड मैथेमेटिक्स)। पुस्तक का नाम

भी बड़ा विचित्र और लेखक भी अद्‌भुत पुरुष । लेखक का नाम था : शूब्रिज कार ।

तुम समझते होगे, यह कोई कोर्स की किताब रही होगी, या आगे के दर्जे में पढ़ाई जाने वाली पुस्तक । बात ऐसी नहीं है । इसमें अंक-गणित, बीज-गणित, त्रिकोणमिति और कलन के ऊंचे-ऊंचे सूत्र—जो उस समय तक ज्ञात थे—एकत्रित कर दिये गये थे । लेखक ने उन सूत्रों के साथ नये-नये प्रश्न भी लिख दिये थे ।

यह कार महोदय कौन थे ? यह कोई महान प्रोफेसर थे अथवा विख्यात गणित-शास्त्री थे ?

नहीं ।

वह स्वयं रामानुजन की तरह् एक अत्यन्त निर्धन अंग्रेज गणितज्ञ थे। चालीस वर्ष की अवस्था तक उनको कोई नौकरी नहीं मिली थी । वह उस समय तक बी. ए. भी पास नहीं हुए थे । लड़कों को गणित पढ़ाया करते थे । लन्दन की इस गली से उस गली में जाकर ट्यूशन किया करते थे। फिर वह केम्ब्रिज चले गये और केम्ब्रिज-विश्व-विद्यालय में पढ़ने लगे और १८८० में गणित की सबसे बड़ी परीक्षा "ट्राइपास" पास की । केम्ब्रिज-विश्व-विद्यालय में पढ़ते समय भी उन्होंने ट्यूसन नहीं छोड़े, अपनी कक्षा तक के विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे । पढ़ाने

के लिए उन्होंने जो नोट बनाये थे, उन्हीं को दो भागों में छाप दिया। उनकी पहली पुस्तक उसी साल प्रकाशित हुई जिस साल उन्होंने 'ट्राइपास' की परीक्षा पास की थी।

इस निर्धन विद्वान को कोई भी सम्मान नहीं मिला। बहुत कम लोग जानते हैं कि इस नाम का कोई आदमी था।

इस पुस्तक को देखते ही रामानुजन को लगा जैसे उसे कोई बहुत बड़ी निधि मिल गयी हो! प्रसन्नता से वह उछल पड़ा। अपना फेल होना, अपमान और घर की चिन्ता—सब-कुछ भूल गया! उसके सामने एक अद्भुत जगत के द्वार खुल गये। उसकी सोयी हुई शक्तियां जाग उठीं!

वह पुस्तक में दिये हुए सूत्रों को स्वयं निकालने और एकदम सिद्ध करने में जुट गया। जब तक वह एक-एक सूत्र को अपने-आप न निकाल लेता उसको चैन न मिलता।

कोई और पुस्तकें तो थीं नहीं जिनमें देखकर वह समझ सकता कि दिये हुए सूत्र सही हैं या गलत। उसे तो एक-एक बात की अपने-आप जांच करनी थी। दो ही साधन थे उसके पास: बुद्धि और परिश्रम। इस तरह

वह एक-एक सूत्र की "खोज" करता हुआ उस पुस्तक का अध्ययन करता रहा।

रात को काम करते-करते वह सो जाता तो स्वप्न में ही प्रश्नों को हल करता रहता। सबेरे उठकर सबसे पहले सिरहाने रखे कागज पर उत्तर लिख लेता और फिर उसको ठीक से सिद्ध करता। रामानुजन का कहना है :

"मुझे स्वप्न में प्रेरणा मिलती थी और मैं प्रश्न स्वप्न में ही हल कर लेता था।"

बात असल में यह है कि सोते समय तक वह प्रश्नों के बारे में सोचता रहता, जिससे सवाल उसके मस्तिष्क पर छाये रहते। नींद आने पर जब पूरी तरह शान्ति हो जाती, तो मस्तिष्क अपना काम पूरा कर देता।

कुछ ही दिनों में रामानुजन ने कार की पुस्तक का एक-एक प्रश्न हल कर डाला। इस के साथ ही अपने-आप कई हजार प्रश्न बनाकर भी हल कर डाले। और ये सभी प्रश्न छोटे-मोटे कक्षा-कार्यों या परीक्षा के प्रश्न नहीं थे। ये ऐसे महत्वपूर्ण सूत्र थे जिन पर आगे चलकर बहुत से विद्वानों ने सर खपाया।

रामानुजन ये सवाल जिन कापियों पर करता उन्हें ठिकाने से रखता जाता था। ये सारे कागज

आज भी सुरक्षित हैं। इनके चित्र लेकर दो मोटे-मोटे ग्रन्थ प्रकाशित किये गये हैं। जब तुम बड़े होगे तो इन ग्रन्थों को देख सकोगे।
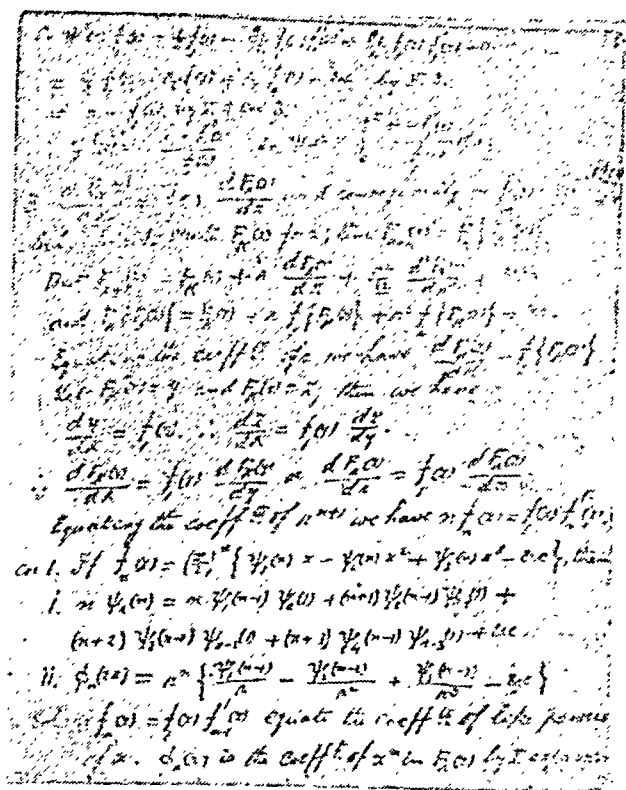
रामानुजन की 'नोटबुक' का एक पृष्ठ

इनका नाम है : "श्रीनिवास रामानुजन की नोट बुक"।

नोन-तेल-लकड़ी

दिन बीतते गये। एक वर्ष गुजरा। दूसरा वर्ष गुजरा। तीसरा शुरू हुआ।

रामानुजन का वही धंधा। वही कार की किताब, वही कलम-पेन्सिल, वे ही सवाल।

घर वाले ऊब गये। यह लड़का बीस-बाईस वर्ष का हो गया। न कुछ करना चाहता है, न पढ़ना चाहता है, न पैसे कमाना चाहता है। पता नहीं इसके मन में क्या है? इसके दिन कैसे कटेंगे?

उन्हें लड़के की हर समय चिन्ता रहने लगी। वह सोचने लगे : क्या तरकीब की जाय कि यह लड़का काबू में आये और कुछ काम-काज शुरू करे। सोचते-सोचते उनको एक तरकीब सूझ गयी।

अच्छा! रामानुजन का विवाह कर दिया जाये तो इसकी अकल ठिकाने लग जायेगी! बोझ पड़ेगा तो झख मारकर कुछ न कुछ करेगा!

लेकिन इस गरीब, बेरोजगार आदमी के साथ

कौन शादी करने को तैयार होगा ? खैर, कुछ दिन की देर-खोज के बाद एक गरीब ब्राह्मण उसके साथ अपनी लड़की का विवाह करने को तैयार हो गया।

१९०७ का साल। एक दिन रामानुजन दूल्हा बना।

कुडुम्-कुडुम्-धुम ! कुडुम्-कुडुम्-धुम !

बरात गयी, विवाह हुआ। दुल्हन घर आ गयी।

पर...

पर, अभी तक खाने-पीने की, पैसे-कौड़ी की कोई फिक्र नहीं थी। अब बीबी घर में आयी तो पैसे की चिन्ता हुई। नमक-तेल-लकड़ी कहां से जुटाई जाय कि घर का काम चले।

अब रामानुजन को नौकरी की फिक्र हुई। मगर नौकरी के लिए चाहिए सिफारिश। और सिफारिश कोई छोटे आदमी तो करते नहीं। सिफारिश चाहिए बड़े आदमी की। रामानुजन की सिफारिश कौन बड़ा आदमी करता ? उसके सारे सम्बन्धी और नातेदार गरीब थे। वह खुद गरीब था। ऊपर से पढ़ाई में तेज नहीं। कहीं भी कोई नौकरी को नहीं पूछता था।

दो एक खाते-पीते भले आदमी थे जो उसकी योग्यता को जानते थे और उसकी गम्भीरता, उसकी

लगन, की प्रशंसा करते थे। उन्होंने भी कई जगह पर रामानुजन को नौकरी दिलाने की कोशिश की। लेकिन कहीं भी दस-पन्द्रह रुपये माहवार से ज्यादा की नौकरी नहीं दिला सके।

श्रीनिवास रामानुजन ट्यूशन करके दस-पन्द्रह रुपये हर महीने कमाता रहा और इस तरह अपना पेट पालता और घर वालों को सहायता देता रहा।

धीरे-धीरे विवाह के बाद तीन वर्ष बीत गये। उसे कोई काम की नौकरी नहीं मिली। ऐसा मालूम होता था मानो उसकी गरीबी और दुर्दशा का कभी अन्त ही नहीं होगा।

परन्तु इस सारी विपत्ति और संकट के बीच उसको सहारा मिलता रहा अपनी गणित से। रोज वह घन्टों कार की पुस्तक लिये काम में जुटा रहता।

गणित के प्रश्न हल करता-करता वह आनन्द के संसार में पहुंच जाता और अपनी निजी परेशानियां बिलकुल भूल जाता।

क्लर्क बाबू

बेरोजगारी के पांच वर्ष !

बेरोजगारी के पांच दिन काटने कठिन हो जाते हैं, फिर ये तो पांच वर्ष थे !

आखिर बेरोजगारी के ये पांच वर्ष बीते और एक दिन उसको नौकरी मिल गयी !

कुछ लोग रामानुजन को सहायता देने की कोशिश कर रहे थे। उनमें तीन आदमी थे—रामस्वामी अय्यर, शैशव अय्यर और रामचन्द्र राव। इन्हीं तीनों की दौड़-से उसको नौकरी मिली।

मद्रास में बहुत बड़ा बन्दरगाह है। वहां दूर-दूर जहाज आते हैं, सामान उतारते-लादते हैं और यात्रियों को लाते-लेजाते हैं। पूरे बन्दरगाह का प्रबन्ध जिस दफ्तर से होता है उसे अंग्रेजी में कहते हैं "पोर्ट ट्रस्ट आफिस"। बस यूं समझ लो—समुद्री स्टेशन मास्टर का दफ्तर।

इसी पोर्ट ट्रस्ट दफ्तर में १९१२ में रामानुजन क्लर्क बन गया।

तनखा ?

पैंतालिस रुपये महीना ।

घर वालों को बड़ी खुशी हुई कि अब आमदनी दुगनी हो गयी । रामानुजन को यह खुशी हुई कि अब उसे बेरोजगारी के दिनों की इधर-उधर की बातें नहीं सुननी पड़ेंगी ।

दफ्तर में बहुत से बाबू लोग काम करते थे । कुछ देर काम और ज्यादा देर गपशप । जब देखो तब बाबुओं की कोई न कोई टोली चाय-घर में जमी हंसी-ठट्ठा कर रही है । परन्तु रामानुजन की दूसरे बाबुओं से दोस्ती नहीं थी । वह अलग-थलग रहता और अपने काम में डूबा रहता ।

दोपहर में खाने की छुट्टी होती । सब लोग होटलों में चले जाते । कुछ लोग अपने घरों से खाना लाते थे । साथ बैठकर लोग टोलियों में खाना खाते । बस एक रामानुजन नहीं जाता था कहीं । वह अपनी कुर्सी पर बैठा कुछ लिखता-पढ़ता रहता । उसके अफसर यह देखा करते । उन्हें आश्चर्य होता । वे सोचते — यह बाबू अनोखे ढंग का है ।

एक दिन की बात है । उसका लिखा हुआ एक

कागज उड़ गया। इस कागज को पाया एक अंग्रेज अफसर ने।

"अरे! यह क्या? इसमें तो गणित लिखी है और गणित भी बहुत ऊंची। भला किसने इस तरह का सवाल किया है?"

उसे एक दिन खयाल आया नये बाबू का जो चुपचाप बैठा कलम घिसता रहता है! कहीं उसी का लिखा कागज तो नहीं है यह? सो, उसने रामानुजन को बुलाकर पूछा :

"क्यों रामानुजन! तुम दोपहर में बैठे-बैठे क्या किया करते हो?"

"कुछ नहीं हुजूर? बस लिखता-पढ़ता रहता हूं।"

"क्या लिखते हो?"

"जी, यही गणित के सवाल लगाता हूं।"

"तो क्या यह कागज तुम्हारा है?"

"जी हां!"

"अरे, तो तुम गणित जानते हो? कहां पढ़ी है तुमने?" अफसर ने पूछा।

"कहीं नहीं हुजूर, अपने आप।" रामानुजन ने उत्तर दिया।

" 'अपने आप ?' किताबें कहां मिलीं ?"

"कहीं नहीं। बैठे-बैठे सवाल किया करता हूं।"

अंग्रेज अफसर चकरा गया। गणित वह स्वयं जानता था। इतनी ऊंची गणित तो उसने भी नहीं पढ़ी थी। और यह बेचारा एक गरीब, नंगे पांव आने वाला, एफ. ए. फेल बाबू ! यह कहां से इतनी ऊंची-ऊंची बातें अपने-आप निकाल लेता है ?

उसने एक दूसरे अफसर दोस्त को यह सारी बात बतायी। दोनों यह सोचने लगे कि इस बाबू को इसके असली काम — गणित — के अध्ययन में लगाने की कौन सी तरकीब की जाय।

हमारे देश में उस समय ऊंचे अध्ययन की सुविधायें बहुत कम थीं और फिर रामानुजन के पास कोई डिग्री भी नहीं थी। फिर भी उसके दो अंग्रेज प्रशंसक थे—सर फ्रान्सिस स्प्रिंग और सर गिलबर्ट वाकर। उन्होंने सोचा यदि उसके इंग्लैंड जाने का प्रबन्ध हो जाय तो वहां वह पढ़ भी सकेगा और कायदे से काम भी कर सकेगा। साल भर के भीतर ही उन्होंने एक वजीफे का प्रबन्ध करा दिया और रामानुजन को साठ पौंड वार्षिक (७५ रु. मासिक) मिलने का प्रबन्ध हो गया।

अब समस्या यह थी : वह इंग्लैण्ड जाय तो कैसे ?

सबसे बड़ी अड़चन तो यही थी कि उसके पास कोई डिग्री नहीं थी। कौन सी युनिवर्सिटी उसको दाखिल करने को तैयार होगी ?

परन्तु रामानुजन ने भी ठान लिया था कि इंग्लैण्ड गये बिना वह दम नहीं लेगा।

धूल में हीरा

रामानुजन को अब इंग्लैण्ड जाने की धुन सवार हुई। उन्होंने बहुत से बड़े-बड़े प्रोफेसरों को लम्बी-लम्बी चिट्ठियां लिखीं। इन चिट्ठियों में उन्होंने अपना पूरा हाल लिखा और इंग्लैण्ड जाने के प्रबन्ध में उनसे मदद मांगी।

मगर न कोई डिग्री, न पास पैसा। भला ऐसे आदमी की सुनता कौन ?

इंग्लैण्ड में एक छोटा सा नगर है—क्रेम्ब्रिज। यह नगर इंग्लैण्ड के सबसे पुराने विश्वविद्यालय "क्रेम्ब्रिज विश्वविद्यालय" के लिए प्रसिद्ध है। यह विद्या का बहुत बड़ा केन्द्र है और दुनिया के कोने-कोने से विद्यार्थी यहां आकर अध्ययन करते हैं तथा शिक्षा ग्रहण करते हैं। इस विद्यालय में शास्त्रीय-गणित के प्रोफेसर थे—श्री जी. एच. हार्डी। रामानुजन ने एक चिट्ठी १९१३ के आरम्भ में प्रो. हार्डी को भी लिखी।

चिट्ठी में १२० साध्य (सूत्र) भी लिख भेजे।

प्रो. हार्डी ने चिट्ठी देखी तो अचम्भे में आ गये। कोई आदमी दस-पांच साध्य निकाल ले तो उसे विद्वान समझा जाता है। दफ्तर के इस मामूली से बाबू ने ढेरों सूत्र कैसे निकालकर फेंक दिये जिन्हें समझने में विश्वविद्यालय में पढ़े गणित के डाक्टरों को भी काफी समय लग जाये ?

"यह चिट्ठी लिखने वाला तो एक अर्ध-शिक्षित भारतीय है जिसको पुराने ढंग की भारतीय शिक्षा भी नहीं मिली। वह एफ. ए. भी पास नहीं कर पाया और अपने को बी. ए. फेल भी नहीं कह सकता। असलियत तो यह है कि उसको कुछ पता ही नहीं कि योरोप में गणित का कितना विकास हुआ है। परन्तु उसने अपने दिमाग की ताकत से सब कुछ निकाल लिया है !"—प्रोफेसर हार्डी को सचमुच ऐसा लगा मानो उन्हें धूल में हीरा मिल गया हो। (ये सब बातें प्रोफेसर हार्डी ने २४ वर्ष बाद अमेरिका में विद्वानों के एक सम्मेलन में बतायीं)।

प्रो. हार्डी अब रामानुजन को इंग्लैण्ड बुलाने की तैयारी में लग गये। एक और अंग्रेज विद्वान थे—प्रो. नेविल। उन्होंने भी इस मामले में बड़ा जोर लगाया।

लेकिन काम इतना आसान नहीं था। योरोप पर उस समय लड़ाई के बादल मंडरा रहे थे। भारत में भी राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर उठ रही थी। जो हिन्दुस्तानी इंग्लैण्ड में पढ़ने गये थे, उन्हें स्वतन्त्रता के वातावरण में सांस लेने का अवसर मिलता था। इनमें से बहुत से जब अपने देश वापस आते, तो राष्ट्रीय संग्राम में, देश की आजादी के आन्दोलन में, कूद पड़ते। यही कारण था कि भारतीय विद्यार्थियों को आसानी से इंग्लैण्ड में रहने का मौका नहीं मिलता था। भारतीयों के लिए इंग्लैण्ड जाना आसान नहीं होता था।

और फिर रामानुजन के पास तो कोई डिग्री भी नहीं थी। उसके खाने-खर्चे का भी प्रबन्ध नहीं था। युनिवर्सिटी वाले उसके दाखले में तरह-तरह के अड़ंगे लगा रहे थे। दूसरी तरफ दूसरे अफसर भी कोई न कोई अड़चन खड़ी कर रहे थे। परंतु प्रो. हार्डी जानते थे कि उनको कैसा बहुमूल्य हीरा मिल गया है! और वह रामानुजन को इंग्लैण्ड बुलाने पर तुले हुए थे!

अन्त में प्रो. हार्डी अपने प्रयत्न में सफल हुए और रामानुजन के इंग्लैण्ड जाने का पूरा प्रबन्ध हो गया।

और एक दिन...

१९१४ में रामानुजन मद्रास से एक जहाज में

इंग्लैण्ड के लिए रवाना हो गये। चलते समय उन्होंने अपने पिता से वादा किया: "मैं इंग्लैण्ड में भी हिन्दुस्तानी ही रहूंगा और कोई ऐसी बात नहीं करूंगा जिससे भारतीयता को चोट पहुंचे।"

अपने इस प्रण का रामानुजन ने पूरी तरह पालन किया।

केम्ब्रिज में

अब रामानुजन इंग्लैण्ड पहुंचे ।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ।

नया देश ! नये-नये लोग ! नया रहन-सहन ! कोई सगा-सम्बन्धी नहीं ! रामानुजन को हर चीज, हर बात, अनोखी मालूम होती !

विलायत का खाना-पीना, वहां का पहनावा, उन्हें अच्छा नहीं लगता था। फिर भी वह अपने को वहां के रहन-सहन का आदी बना रहे थे। भोजन तो, जब तक वह वहां रहे, अपने हाथ से बनाते रहे। भारत से रवाना होते समय उन्होंने अपने पिता से जो प्रण किया था, उसका बड़ी कड़ाई से पालन करते रहे। वह अपने तौर-तरीकों में भारतीय ही बने रहे। दूसरे हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की भांति वह नकलची नहीं बन गये।

फिर भी वहां वह अकेले नहीं थे। केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय में गणित के अनेक विद्वानों के बीच उन्हें ऐसा लगता जैसे वह अपने भाई-बन्दों के बीच हों। सभी

उनको सहायता देने की कोशिश करते। सबसे बढ़कर तो यह कि वहां प्रो. हार्डी स्वयं मौजूद थे।

प्रो. हार्डी उनसे रोज मिलते, उनके पास घंटों बैठा करते, साथ में चाय पीते, टहलने जाते और गणित से लेकर राजनीति तक की बातें करते।

अब रामानुजन ने जुटकर गणित के ग्रंथों का अध्ययन शुरू किया। कुंभकोणम और मद्रास में उन्हें कार की 'सूत्र संग्रह' को छोड़ कोई दूसरी बड़ी पुस्तक देखने को नहीं मिली थी। यहां केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय के विशाल पुस्तकालय में हजारों ऊंचे-ऊंचे ग्रंथ पड़े हुए थे। प्रो. हार्डी की प्रेरणा से, और उनकी देख-रेख में, रामानुजन ने मोटी-मोटी किताबों को पढ़ना शुरू किया।

परन्तु अब रामानुजन सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष के हो चुके थे और इतने दिनों तक उन्होंने बिना किसी पुस्तक की सहायता के काम किया था। वह अपने दिमाग की ताकत से सारा हिसाब लगा लेते थे। अभी तक उन्हें यह सोचने का मौका नहीं मिला था कि गणित में "परम सत्य" नाम की कोई चीज नहीं होती। किसी बात के सत्य होने के लिए कुछ विशेष शर्तें जरूरी होती हैं। २ और २ मिलकर हमेशा ४ नहीं

होते; दो मील उत्तर जाकर दो मील और उत्तर चलने पर ही चार मील की दूरी तय होती है। मतलब यह कि दो और दो चार। परन्तु दो मील उत्तर जाकर दो मील दक्षिण चलने पर, आदमी फिर पुरानी जगह पर पहुंच जाता है। इस अवस्था में दो और दो मिलकर शून्य हुए। और दो मील उत्तर जाकर दो मील पूरब जाओ तो न चार होगा, न शून्य। इससे तो तुम समझ ही जाओगे कि दो और दो मिलकर हमेशा चार नहीं होते। चार होने के लिए शर्त यह है कि दिशा एक ही हो।

रामानुजन तो दो और दो चार जोड़ने के आदी थे। उन्होंने केम्ब्रिज में पढ़ना शुरू किया तो उन्हें स्वयं पता चला कि उनके बहुत से सूत्र ऐसे हैं जिनमें सत्य की शर्त निकालना आवश्यक है, नहीं तो वे गलत माने जायेंगे। वह अब धीरे-धीरे यह भी समझने लगे कि जो सूत्र निकाला जाय, उसको सत्य सिद्ध करना भी आवश्यक है और जब तक वह सिद्ध न किया जाय तब तक सूत्र मान्य नहीं होगा। धीरे-धीरे वह अपने सूत्रों को "सिद्ध" भी करने लगे।

सभी को यह देखकर आश्चर्य होता था कि थोड़े ही समय में रामानुजन ने नयी-नयी बातें सीखकर

उनका उपयोग करना शुरू कर दिया। उनके बड़े-बड़े लेख बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में छपने लगे। बहुत से विद्वान उनसे मिलने के लिए आने लगे। प्रो. वाटसन, प्रो. लिट्लवुड, प्रो. मार्डल, प्रो. राइट और दूसरे बड़े-बड़े प्रोफेसर उनसे मिलने आये। लोग चिट्ठी-पत्री से उनके काम को देखने और समझने लगे। सभी को आश्चर्य होता था कि रामानुजन में इतना कड़ा परिश्रम करने की क्षमता है और उनका दिमाग इतना तेज है। इन विद्वानों ने उन्हें एक ओर तो नये-नये सिद्धान्त सिखाने में मदद दी, दूसरी ओर उनके अनेकों सूत्रों को लेकर स्वयं सिद्ध भी किया।

रामानुजन का अध्ययन चलता रहा। वह दिन-रात पुस्तकालय में जुटे रहते थे। एक दिन पुरानी पत्रिकायें उलटते-उलटते उन्हें "लण्डन मैथेमेटिकल सोसाइटी" की एक पत्रिका मिल गयी। उसमें वह एक लेख देखकर उछल पड़े। लेख में दो सूत्र छपे थे। बड़े सुन्दर, अद्‌भुत। ठीक उसी ढंग के जैसे रामानुजन निकाला करते थे।

लेखक का नाम था—एल. जे. राजर्स। वह भी रामानुजन की भांति अब तक कोने में पड़े थे। वैसे थे

बहुत बड़े विद्वान। गरीब विद्वान होने के कारण कोई उनको जानता भी नहीं था।

रामानुजन ने झट उन्हें चिट्ठी लिख डाली और यहीं से दोनों की मैत्री और वैज्ञानिक सहयोग आरम्भ हुआ। यह बात १९१७ की है। दोनों ने मिलकर कुछ सूत्र और सिद्धान्त सिद्ध किये जो विद्वानों में राजर्स-रामानुजन आइडेन्टिटीज (तादात्म्य) के नाम से प्रसिद्ध हैं।

अस्पताल और सम्मान

तीन वर्ष तक रामानुजन का अध्ययन निरंतर चलता रहा। इस बीच वह नये-नये सूत्र खोजते और अपने पुराने सूत्रों को सिद्ध करते रहे।

उनके दर्जनों लेख पत्रिकाओं में छपे। लोगों को आश्चर्य होता कि गणित के इतने मौलिक और बड़े-बड़े लेख वह कैसे लिख लेते हैं। इन तीन वर्षों में उनके जितने लेख छपे—बड़े-बड़े विद्वानों ने अपने जीवन में उनके आधे भी नहीं छपवाये होंगे। रामानुजन ने लगभग तीन सौ पन्नों के लेख इन तीन वर्षों में छपवा डाले।

तीन सौ पन्ने क्या होते हैं, इसका अन्दाज तुम इसी से लगाओ कि गणित में बातें फैलाकर नहीं कही जातीं। बहुत संक्षेप में, थोड़े शब्दों में, गठे हुए रूप में ढेर सी बातें रख दी जाती हैं। आम तौर से लेख दस-बारह पन्नों से बड़े नहीं होते। साल भर में कोई दो-तीन लेख लिख ले तो समझा जाता है उसने बहुत बड़ा काम

किया। इस हिसाब से तीन वर्ष में रामानुजन ने इतने लेख छपवाये, जितने दस आदमी मिलकर भी नहीं छपवा सकते थे।

इसके अलावा उन्होंने सब-कुछ छपवाया भी नहीं। बहुत से सूत्र वह अपने पास ही रखे रहे, जो उनके मरने के बाद प्रो. हार्डी और दूसरे सहयोगियों ने छपवाये।

इतनी कड़ी मेहनत ! दिन-रात काम में जुटे रहने का परिणाम यह हुआ कि रामानुजन का स्वास्थ्य खराब रहने लगा। बचपन में भी उन्हें अच्छा खाना देखने को नहीं मिला था। रूखा-सूखा खाकर वह पले-बढ़े थे। गरीबी और बेरोजगारी में सत्ताईस-अट्ठाईस बरस तक जीवन व्यतीत हुआ था। और अब विदेश में इतना कड़ा बौद्धिक काम, अपने हाथ से भोजन बनाना, घंटों दूसरों से गणित की समस्याओं पर बहस करना ! एक बहुत बड़ा बोझ हर घड़ी उनके शरीर और मस्तिष्क पर लदा रहता।

१९१७ में गर्मी के दिन थे। वह एकदम बीमार पड़ गये। मित्रों ने उन्हें अस्पताल पहुंचाया। दवा दारू हुई। आराम हो गया। वह फिर विश्वविद्यालय लौट आये। लेकिन तब से बराबर बीमार रहने लगे। आये दिन अस्पताल में भर्ती होना और ठीक होकर

अपने काम पर लौट आना, वस यही सिलसिला जारी रहा।

परन्तु इस वीमारी में भी उन्होंने काम करना वंद नहीं किया। अस्पताल में भी लेटे-लेटे कोई न कोई सूत्र निकालते रहते। लोग उनसे मिलने जाते तो रामानुजन अपने स्वास्थ्य के वारे में कम वातें करते। ज्यादा वातें करते थे, किसी न किसी सूत्र पर।

एक दिन प्रो. हार्डी अस्पताल में उनको देखने आये। वात चल गयी सवारी की। प्रो. हार्डी वोले, "मैं तो कार से आया हूं।"

रामानुजन ने पूछा, "कार का नम्वर क्या था ?"

"नम्वर था : १७२९।" प्रो. हार्डी ने कहा। "मगर है वड़ा वेतुका नम्वर। गणित के हिसाव से अशुभ तो नहीं ?"

"नहीं, प्रो. हार्डी।" रामानुजन झट वोल पड़े। "वात ऐसी नहीं है। वड़ा वढ़िया नम्वर है। दो घन संख्याओं को दो तरीकों से जोड़ने पर जो संख्याएं वनती हैं, उनमें सवसे छोटी संख्या यही है।"

प्रो. हार्डी आश्चर्य में ! वीमारी में भी दिमाग इतना तेज और संख्याओं का इतना गहरा ज्ञान !

वात सही थी। तुम जानते हो कि किसी संख्या को

उसी से दो बार गुणा किया जाय तो प्राप्त संख्या कहलाती है 'घन'। जैसे ४×४×४=६४। तो ६४ घन है। अब

१२×१२×१२+१×१×१

का मूल निकालो।

१०×१०×१०+९×९×९

का भी मूल निकालो। देखो यही संख्या प्राप्त होती है या नहीं।

दूसरी संख्याएं लेकर भी हिसाब लगाओ और देखो कि १७२९ से छोटी कोई संख्या मिलती है या नहीं। शर्त यही है कि वह दो तरीकों से आये।

तो, रामानुजन का नाम दिन प्रति दिन और भी प्रसिद्ध होने लगा। बड़े-बड़े विद्वान उनका लोहा मानने लगे।

रायल सोसाइटी के सदस्य

इंग्लैण्ड में वड़े-बड़े विद्वानों की एक संस्था है। उसका नाम है 'रायल सोसाइटी'। सारे संसार के थोड़े से सर्वश्रेष्ठ विद्वान ही इसके सदस्य होते हैं। इस संस्था का सदस्य चुना जाना विद्वानों के लिए सबसे वड़े सम्मान की वात समझी जाती है। लोगों का खयाल था कि हिन्दुस्तानी इस संस्था के सदस्य वनाये जाने की योग्यता नहीं रखते।

परन्तु रामानुजन ने अपनी आश्चर्यजनक सफलता से इस विचार को विल्कुल झूठा सिद्ध कर दिया।

१९१८ में 'रायल सोसाइटी' ने सर्व-सम्मति से श्रीनिवास आयंगर रामानुजन आयंगर को "गणित क्षेत्र में उनकी महान सेवाओं के लिए" रायल सोसाइटी का फैलो (सदस्य) चुन लिया।

इसके अलावा केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का एक कालेज है : ट्रिनिटी कालेज। उसका सदस्य चुना जाना भी कम सम्मान की वात नहीं है। भारतीयों को इस

कालेज का फैलो नहीं चुना जाता था। उसी साल सन १९१८ में रामानुजन ने यह परम्परा भी तुड़वा दी।

सन् १९१८ में रामानुजन को ट्रिनिटी कालेज का सदस्य चुन लिया गया।

अन्तिम दिन

रामानुजन की बीमारी ठीक नहीं हुई।

फिर, वह अपने प्रण के भी बहुत पक्के थे। बीमार रहने पर भी वह अपना भोजन अपने हाथ से बनाते थे। बड़ी मेहनत पड़ती थी! शरीर दुर्बल होता जा रहा था। डाक्टर उनसे मांस, मछली और अंडा खाने को कहते। परन्तु वह किसी तरह यह सब खाने को तैयार न होते।

प्रो. हार्डी और उनके दूसरे मित्र हर प्रकार से को आराम पहुंचाने की कोशिश करते। परन्तु वह के खाने-पीने का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकते थे! पर रामानुजन भी अपने फैसले से टस-से-मस न होते।

अन्त में सबने सोचा कि रामानुजन कुछ दिनों के लिये घर चले जायें, तो ठीक होगा। वहां उन्हें खाने-पीने का आराम रहेगा। बीबी-बच्चों और भाई-बन्दों के बीच स्वास्थ्य सुधर जायेगा। फिर अच्छे होकर

वापस इंग्लैण्ड लौटेंगे तो और भी डटकर काम कर सकेंगे।

सो, रामानुजन की वापसी का प्रवन्ध हो गया।

और एक दिन रामानुजन मद्रास पहुंच गये। वही मद्रास जहां की गलियों में वह एक दिन मारे-मारे फिरते थे। यहां किसी जमाने में वह 'पोर्ट ट्रस्ट' के दफ्तर में कलम घिसा करते थे और कोई उन्हें पूछता तक नहीं था। परन्तु आज रामानुजन महान गणतिज्ञ वनकर घर लौटे थे, जिनका सारी दुनिया लोहा मानती थी।

वड़ा सम्मान हुआ। वड़े-वड़े प्रोफेसर, विद्वान और विश्वविद्यालय के प्रोफेसर उनसे मिलने आये। घर वालों की खुशी का तो कोई ठिकाना नहीं था। उनके घर की धूल से जो हीरा निकला था, प्रो. हार्डी ने उसको तराशकर पूरी तरह चमका दिया था, और आज वह हीरा फिर उनके घर की शोभा वढ़ा रहा था।

कुछ ही दिनों में ऐसा लगने लगा कि रामानुजन का स्वास्थ्य पूरी तरह सुधर जायेगा। वेकार वैठना उनके लिये सम्भव नहीं था। और वह जल्द ही फिर अपने काम में जुट गये। उन्होंने अपनी "खोज" जारी रखी और छोटे-वड़े कई लेख मद्रास में ही तैयार किये। फरवरी १९२० में उन्होंने एक लम्वा पत्र प्रो. हार्डी

और वाट्सन को लिखा। उन्होंने एक प्रकार की विचित्र संख्याओं की खोज करके उनके गुण विस्तार से इस पत्र में बताये। इस संख्या का नाम उन्होंने रखा : "नकली थीटा संख्या" (माक थीटा फैक्शन्स)। ये संख्याएं कितनी महत्वपूर्ण थीं, इसका अन्दाज इसी से लगाओ कि १५ वर्ष बाद जब प्रो. वाट्सन "लण्डन मैथेमेटिकल सोसाइटी" के अध्यक्ष चुने गये तो उन्होंने रामानुजन के इसी पत्र पर भाषण दिया।

और अन्त में २६ अप्रैल सन् १९२०।

रामानुजन काफी समय बीमार रहे। ऊपर से कठिन परिश्रम। गणित की संख्याओं से जूझते रहना। जूझ-जूझकर उन्होंने अद्‌भुत सूत्रों का पता लगाया।

किन्तु विश्व में एक ही संख्या ऐसी है जो अभेद्य है, अविभाज्य है। यह संख्या है शून्य! रामानुजन गणित के सूत्र खोजते-खोजते इस अल्पायु में ही महाशून्य में लीन हो गये।

रामानुजन चल बसे।

सारी दुनिया चकरा गयी।

विद्वानों की शोक सभाएं हुईं। वैज्ञानिक पत्रिकाओं में लेख लिखे गये। कोई भी यह नहीं समझता

था कि इतनी कम उम्र में रामानुजन की मृत्यु होगी। अभी वह पूरे तेंतीस वर्ष के भी नहीं हुए थे।

वैसे तो बहुत से महान पुरुष ऐसे हो चुके हैं जो संसार में बहुत दिन नहीं रहे। फ्रान्स का महान गणि-तज्ञ ऑबेल केवल २६ वर्ष जीवित रहा। जर्मन गणि-तज्ञ रीमां, जिसने विश्लेषण और ज्यामिति में नई-नई शाखाओं को जन्म दिया, केवल ४० वर्ष जिन्दा रहा। ये लोग कुछ दिन और जीवित रहते तो संसार को और भी बहुत-कुछ प्रदान कर जाते।

जैसा कि प्रो. हार्डी ने कहा है—कम उम्र में रामानुजन के मरने से इतनी हानि नहीं हुई जितनी कि उनकी बेरोजगारी से।

एक ओर, गुलाम देश में पढ़ाई का जो ढंग था—उसने रामानुजन को कालेज में पास नहीं होने दिया। दूसरी ओर, देश में जो गरीबी और बेरोजगारी फैली थी उसने रामानुजन को बैठकर पढ़ने और काम करने का अवसर नहीं दिया।

बीस-बाईस वर्ष की अवस्था में ही रामानुजन को यदि कोई छोटा-सा वजीफा या किसी कालेज में काम मिल गया होता, तो वह हमें और भी बहुत-कुछ प्रदान कर गये होते।

गोल अंक !

रामानुजन की जीवन-कथा तो तुम पढ़ चुके। अब उनके काम के बारे में भी कुछ सुन लो।

यह तो तुम्हें मालूम ही है कि रामानुजन अंक-गणित और बीज-गणित में अधिक रुचि लेते थे। सच पूछो तो उन्होंने इन दोनों को मिलाकर एक कर दिया।

उनका सबसे महत्वपूर्ण काम अंक-शास्त्र (थियरी आफ नम्बर्स) में है। बड़े होकर जब तुम इन विषयों को पढ़ोगे, तो इनकी ऊंची-ऊंची बातों को समझ सकोगे। फिर भी कुछ मोटी-मोटी बातें हम यहां तुम्हें बतायेंगे। इन पर विचार करो और अपने-आप उदाहरण बनाकर देखो तो इन बातों को ज्यादा आसानी से समझ सकोगे।

अच्छा तो, सबसे पहले हम तुम को गोल अक के बारे में बताते हैं।

तुम भी कहोगे "अंक" और "गोल"? भला यह कैसे हो सकता है?

तुम जानते हो कि अंक दो प्रकार के होते हैं। रूढ़ और विभाज्य। जिन अंकों के गुणन खंड निकाले जा सकते हैं उनको विभाज्य कहते हैं, और जिनके खंड नहीं हो सकते उन्हें रूढ़ कहा जाता है। जैसे दो संख्याओं को लो : ७८ और ७१

७८=२×३×१३।

७१ के खंड नहीं हो सकते।

इसलिए ७८ विभाज्य संख्या है और ७१ रूढ़।

तो गोल अंक एक विशेष प्रकार के विभाज्य अंक होते हैं, जो बहुत से छोटे-छोटे रूढ़ अंकों के गुणा करने से प्राप्त होते हैं। जैसे

१२००=२×२×२×२×३×५×५

यह एक ऐसा गोल अंक है जो २, ३ और ५ को कई बार गुणा करने से प्राप्त होता है।

एक दूसरा अंक लो।

२१८७=३×३×३×३×३×३×३

यह १२०० से भी अधिक गोल संख्या है, क्योंकि इसमें एक ही संख्या—३—को बार-बार गुणा किया गया है।

देखने में आता है कि गोल अंक बहुत थोड़े होते है। तुम इसकी परख खुद कर सकते हो। रिक्शे या

मोटर का नम्बर देखो। उसके गुणन खंड निकालने की कोशिश करो। वस या रेल का टिकट, लाटरी का कूपन, क्रिकेट के स्कोर, इम्तहान का रोल नम्बर—इस तरह के अंक जहां भी तुम्हें देखने को मिल जायें, उनको २, ३, ५, ७, ११, १३ आदि रूढ़ संख्याओं से भाग देकर देखो। तुम्हें पता चलेगा कि शायद ही कोई गोल अंक मिले।

ऐसा क्यों होता है ? आधे अंक तो दो से विभाजित हो सकते हैं। एक तिहाई तीन से। फिर तो हमें यह आशा करनी चाहिए कि अंकों के वहुत से छोटे-छोटे खंड होने चाहिएं। इस प्रकार छोटी-छोटी रूढ़ संख्याओं को वार-वार गुणा करने से वड़ा-सा अंक प्राप्त हो जाना चाहिए।

अच्छा, तो रामानुजन ने अपने सामने यह समस्या रखी कि "किसी भी वड़ी संख्या के कितने रूढ़ गुणन खंड की आशा करनी चाहिए ?"

उन्होंने यह सिद्ध किया कि रूढ़ खंडों की संख्या वहुत ज्यादा नहीं होती। फलतः रूढ़ संख्याएं भी छोटी नहीं होतीं और वहुत कम अंक गोल होते हैं। जैसे १००,००,००० (१ करोड़) के आस-पास की कोई संख्या लो। इसके ६, ७ से अधिक रूढ़ खंड नहीं होंगे।

एक मजेदार उदाहरण लो

१०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,
००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,
००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,
००० (एक के आगे ८० शून्य)।

इससे छोटी कोई भी संख्या लो, और उसके गुणन-खंड करो, तो तुम देखोगे कि उनमें ३० से अधिक रूढ़ नहीं हो सकते।

है न मजेदार बात ?

अंक विभाजन

अच्छा एक बात बताओ।

तुमको चार बिस्कुट मिल जायें, तो पूरे-पूरे बिस्कुट कैसे खाओगे ?

तुम झट से कहोगे : एक-एक करके खायेंगे।

तो क्या दो-दो करके नहीं खाओगे ? दो-दो खाने से भी तो चारों बिस्कुट खतम हो सकते हैं ? फिर अगर कोई तीन बिस्कुट एक साथ खाये और बाद में एक और खा ले तो क्या कोई बुराई है ? कोई ऐसा भी तो हो सकता है जो चारों बिस्कुट एक साथ ही खा जाय।

इसी बात को जरा अंकों में लिखकर देखो।

४=४=२+२=२+१+१=३+१=१+१+१+१।

इस तरह तुम देखोगे कि चार बिस्कुट खाने के कुल पांच तरीके हुए।

यह जो बिस्कुट वाली बात हमने तुम्हें बतायी, इसी तरह की बातों का अध्ययन गणित की एक शाखा

में किया जाता है और इस शाखा का एक भारी भरकम नाम है: "अंक विभाजन सिद्धान्त" (थियरी आफ पार्टिशन)।

रामानुजन को एक प्रकार से इस सिद्धान्त का जन्मदाता माना जा सकता है। उनके पहले भी कुछ लोगों ने मोटे-मोटे गुर बताये थे, लेकिन रामानुजन ने अध्ययन करके कुछ बड़े उपयोगी सिद्धान्त निकाले।

अच्छा तो, हम उसी के बारे में कुछ बताते हैं।

किसी भी अंक को कई तरीकों से पूर्णांकों में तोड़ा जा सकता है। जैसे—

५=५=४+१=३+१+१=३+२=२+२+१=२+१+१+१=१+१+१+१+१

पूर्णांकों को तोड़ने को विद्वान लोग "विभाजन" (पार्टिशन) कहते हैं। जितने ढंगों से विभाजन किया जा सकता है, उस संख्या को "विभाजन ढंग" कहते हैं।

कागज पेन्सिल लेकर हिसाब लगाओ तो तुम देखोगे कि

४ का विभाजन ढंग=५

५ का विभाजन ढंग=७

६ का विभाजन ढंग=११

इस प्रकार तुम और अंकों के भी विभाजन-ढंग निकालो।

रामानुजन ने बहुत से अंकों के विभाजन-ढंग का अध्ययन किया। वह इस परिणाम पर पहुंचे कि किसी बहुत बड़ी संख्या को लेकर उसके गुणन-खण्ड निकाले जायें तो रूढ़ गुणन-खण्डों की संख्या बहुत थोड़ी होती है। परन्तु किसी बहुत छोटी संख्या का विभाजन किया जाय तो विभाजन-ढंग बहुत होता है।

रामानुजन को अपने अध्ययन में कुछ बड़ी अद्भुत बातें मिलीं। उनमें से कुछ तुम भी याद कर लो :

(१) १, २ या ३ के विभाजन-ढंग १, २ या ३ ही रहेंगे।

(२) अंक में से ४ घटाओ और शेष को पांच से भाग दो। यदि भाग देने पर कुछ न बचे तो विभाजन ढंग ५ से पूरा-पूरा कट जायेगा।

(३) अंक में से ५ घटाओ और सात से भाग दो। संख्या पूरी की पूरी कट जाय तो विभाजन-ढंग ७ से पूरा-पूरा कट जायेगा।

(४) अंक में से ६ घटाओ और शेप को ११ से भाग दो। बाकी कुछ न बचे तो विभाजन-ढंग भी ११ से पूरा-पूरा कट जायेगा।

यह गुर सरल है अथवा कठिन, इसका अनुमान तुम तभी लगा सकोगे जब बहुत से अंकों के विभाजन-ढंग ज्ञात कर लो। एक छोटा सा उदाहरण यह है :

अंक लो १४०३१

इसमें से ६ घटाओ तो मिला १४०२५

यह ११ से पूरा कट जाता है।

जानते हो इस अक का विभाजन-ढंग कितना है ?

जरा पढ़ने की कोशिश करो—

९२,८५,३०,३०,४७,५९,०९,९३,१६,९४,३४, ८५,१५:६६,७१,२७,७५,०८,९२,९१,६०,५६,३५, ८४,६५,००,५४,५६,८२,८१,६४,५८,०८,१५,०४, ०३,४६,७५,६७,५१,२३,९५,८९.५५,९१,१३,४७, ४१,८८,८३,८३,२२,०६,३४,३२,७२,९१.५९,९९, १३,४५,००,७४,५

मजे की बात यह है कि १२७ अंकों की यह संख्या ११ से पूरी-पूरी कट जाती है। एक बार नहीं बल्कि भाग फल को चार-चार बार ग्यारह से भाग दिया जाय तो भी कट जायेगी।

है न रामानुजन का सिद्धान्त ठीक !

जादू के वर्ग

तुमने कवच और तावीज देखे होंगे। उनमें गिनतियां लिखी रहती हैं। उनको पढ़ो तो तुम्हें पता चलेगा कि उनको दायें से बायें, ऊपर से नीचे या तिरछे जोड़ो तो योग सदा एक-सा मिलता है। बात बड़े आश्चर्य की है। यह कैसे हो जाता है?

इसका गुर हम तुमको रामानुजन की नोट-बुक से बताते हैं।

तुम कवच को ध्यान से देखोगे तो तुम्हें पता चलेगा कि उसमें आमतौर से ९ खाने होते हैं—तीन लम्बाई में और तीन चौड़ाई में। इसी बात को गणित की भाषा में कहेंगे कि ३×३ का वर्ग होता है। जोड़ भी आम तौर से तीन से विभाजित हो जाता है। इसी वर्ग को जादू का वर्ग कहते हैं। इसके बनाने या भरने का तरीका रामानुजन ने इस प्रकार बताया है।

१–योग फल को तीन से भाग दो। अब भाग-फल को बिलकुल बीच वाले खाने में रख दो।

२–कोई तिरछी पंक्ति लो जो आमने-सामने

के कोने को मिलाती हो और उसमें इस क्रम से अंक भरो कि हर खाने का पिछले वाले खाने से अन्तर वही रहे।

३–दूसरी तिरछी पंक्ति भी पहली तिरछी पंक्ति की तरह से भरो, अन्तर कुछ वदल लो, लेकिन पंक्ति के भीतर अंतर वही रहे।

४–जो खाने वच गये हों उनमें हिसाव लगाकर संख्याएं भर दो।

उदाहरण के लिए मान लिया कि जोड़ है : १५। अव वीच का अंक हुआ $\frac{१५}{३}$=५।

पहली पंक्ति में अन्तर रखा १; तो संख्याएं हुईं ४, ५, ६। और दूसरी पंक्ति में अन्तर रखा ३; तो संख्याएं हुईं २, ५, ८। लो तुम्हारा जादू का वर्ग वन गया।

६	१	८
७	५	३
२	९	४

अव तुम एक और ३×३ का जादू का वर्ग वनाओ। इसमें कोई संख्या दो वार न आये, जोड़ २७ हो और कोई संख्या दो से न कटती हो।

रामानुजन के बताये हुए नियम के अनुसार बीच के खाने में ९ रखो। पहली तिरछी पंक्ति में २—२, का अन्तर और दूसरी तिरछी पंक्ति में ६—६ का अन्तर लो। बस, वर्ग बन गया :

१५	१	११
५	९	१३
७	१७	३

अब एक और ढंग का वर्ग लो जिसमें दोनों तिरछी पंक्तियों के योग भिन्न-भिन्न हों, परन्तु दाहिने से बायें, या ऊपर से नीचे की पंक्तियों का योग एक ही हो।

ऐसा वर्ग बनाने के लिए दोनों तिरछी पंक्तियों के योग में से साधारण पंक्तियों का योग घटाकर उसे ३ से भाग दो और भाग फल को सबसे बीच वाले खाने में रख दो। बाकी आठों खाने योग-फल देख-देखकर भरो।

उदाहरण के लिए मान लिया कि एक पंक्ति का योग है २०। एक तिरछी पंक्ति का योग है १६ और दूसरी का योग है १९।

अब, रामानुजन के गुर के अनुसार :

$$\frac{१६+१९-२०}{३} = ५$$

५ को रखो बीच के खाने में।

पहली तिरछी पंक्ति का योग है १९ तो शेष सख्याओं का योग हुआ १४। एक ८ ले लिया एक ६।

दूसरी तिरछी पंक्ति का योग १६ है तो शेष दो का योग हुआ ११। उनमें एक १ लिया और दूसरा १०।

वर्ग तैयार है :

१०	२	८
४	५	११
६	१३	१

रामानुजन ने ऐसे ही बहुत से वर्ग बनाये और उनके बनाने के गुर बताये।

छुट्टी के समय तुम भी २१, ४५, ७५ आदि के योग वाले जादू-वर्ग बनाओ और देखो कि इसी सिद्धान्त के अनुसार ५×५ का वर्ग भी तुम से बन सकता है या नहीं।

आसानी के लिए ४५ योग वाला वर्ग लो और बिलकुल बीचों-बीच के खाने में ९ भरो। तुम को कोई मजेदार बात मिले तो हम को जरूर लिखना।

रामानुजन स्मारक

रामानुजन की जीवन कथा तुमने पढ़ डाली। उनके काम के बारे में भी तुमने थोड़ा-बहुत समझ लिया। बड़े होकर तो निश्चय ही तुम उनके कामों और सिद्धान्तों को अच्छी तरह समझ सकोगे।

गरीबी के कारण उनको अपनी शक्तियों और योग्यताओं का पूरी तरह विकास करने का अवसर कभी प्राप्त न हो सका। दूसरे लोगों की भांति यदि वह भी नियमित ढंग से किसी विश्वविद्यालय में शिक्षा पाते, तो न जाने क्या कर डालते। परन्तु कौन कह सकता है कि ऐसी अवस्था में क्या होता। हो सकता है, पढ़-लिखकर वह किसी यूनिवर्सिटी में नौकरी कर लेते, मोटी तनखाह पाते और ठाट-बाट से जीवन बिता देते। बहुत पढ़ते तो कहीं के वाइस-चान्सलर बन जाते। कुछ लोग तो यह कहते हैं कि उनकी सारी देन, उनकी गरीबी और दुर्दिन का फल है। अच्छे दिन देखते तो बिना किसी स्वार्थ-भाव के इतना कड़ा परिश्रम करने की उनको जरूरत ही क्या थी !

जो भी हो, रामानुजन के जीवन से यह प्रेरणा मिलती है कि कठिन परिस्थितियों में भी डटकर निस्वार्थ सेवा की जा सकती है। संसार ने उनका पूरा सम्मान किया और आज भी वहुत से विद्वान उनके छोड़े हुए काम को पूरा कर रहे हैं। ये विद्वान दुनिया के सभी देशों के हैं—मिश्र के प्रोफेसर रजब, स्काटलैण्ड के प्रो. मैकरावर्ट, कनाडा के प्रोफेसर कारलित्स से लेकर हंगरी के प्रो. इरदिश, सोवियत यूनियन के प्रो. क्रेकमर तक उनके सूत्रों को शुद्ध और सिद्ध करने में लगे हुए हैं।

१९३७ में रामानुजन की वर्ष-गांठ सारे संसार में मनायी गयी और वड़ी-वड़ी पत्रिकाओं में उनके जीवन और कार्य सम्वन्धी लेख छपे। अपने देश में भी वड़े-वड़े गणितज्ञों ने रामानुजन के काम को आगे वढ़ाया। इनमें प्रो. चावला, नारायण अय्यर, प्रो. पिल्लै और चन्द्रशेखरन सबसे प्रसिद्ध हैं।

रामानुजन की मृत्यु के तीस वर्ष वाद, २६ जनवरी १९५० को, (भारतीय गणतन्त्र के जन्म से ठीक एक वर्ष पहले) मद्रास मे "रामानुजन गणित संस्थान" (रामानुजन इंस्टीटयूट आफ मैथेमेटिक्स) की स्थापना हुई। इस संस्थान में बहुत से भारतीय गणित-शास्त्री

काम करते हैं। वे रामानुजन के अधूरे काम को पूरा कर रहे हैं।

रामानुजन के सारे लेख "कलेक्टेड पेपर्स आव श्रीनिवास रामानुजन" (रामानुजन लेख-संग्रह) के नाम से उनकी मृत्यु के फौरन बाद इंग्लैण्ड से प्रकाशित हुए। इस संग्रह में लेखों के अलावा रामानुजन की वे चिट्ठियां भी मौजूद हैं, जो उन्होंने प्रो. हार्डी, राजर्स, वाटसन और दूसरे विद्वानों को लिखी थीं।

१९५७ में उनकी 'नोट-बुक' भी छप गयी। यह तो तुम जानते ही हो कि वह अपने सारे कागज-पत्र बड़े जतन से रखते थे। इन सारे कागजों को उनके घर वालों ने मद्रास विश्वविद्यालय को दे दिया था। इन्हीं कागजों का फोटो लेकर वम्बई के 'टाटा मौलिक शोध संस्थान' (टाटा फण्डामेन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट) ने दो जिल्दों में प्रकाशित किया है। इस तरह यह निधि भी सदा के लिए सुरक्षित हो गयी।

ये दोनों ग्रंथ सदैव रामानुजन की याद दिलाते रहेंगे और उनसे हम को विद्या की निष्काम सेवा के लिए सदैव प्रेरणा मिलती रहेगी।

❀